1966F Chotelal Ji

Sansmaran: Chotelal Ji (in Anekant, 1966)

See also 1966F

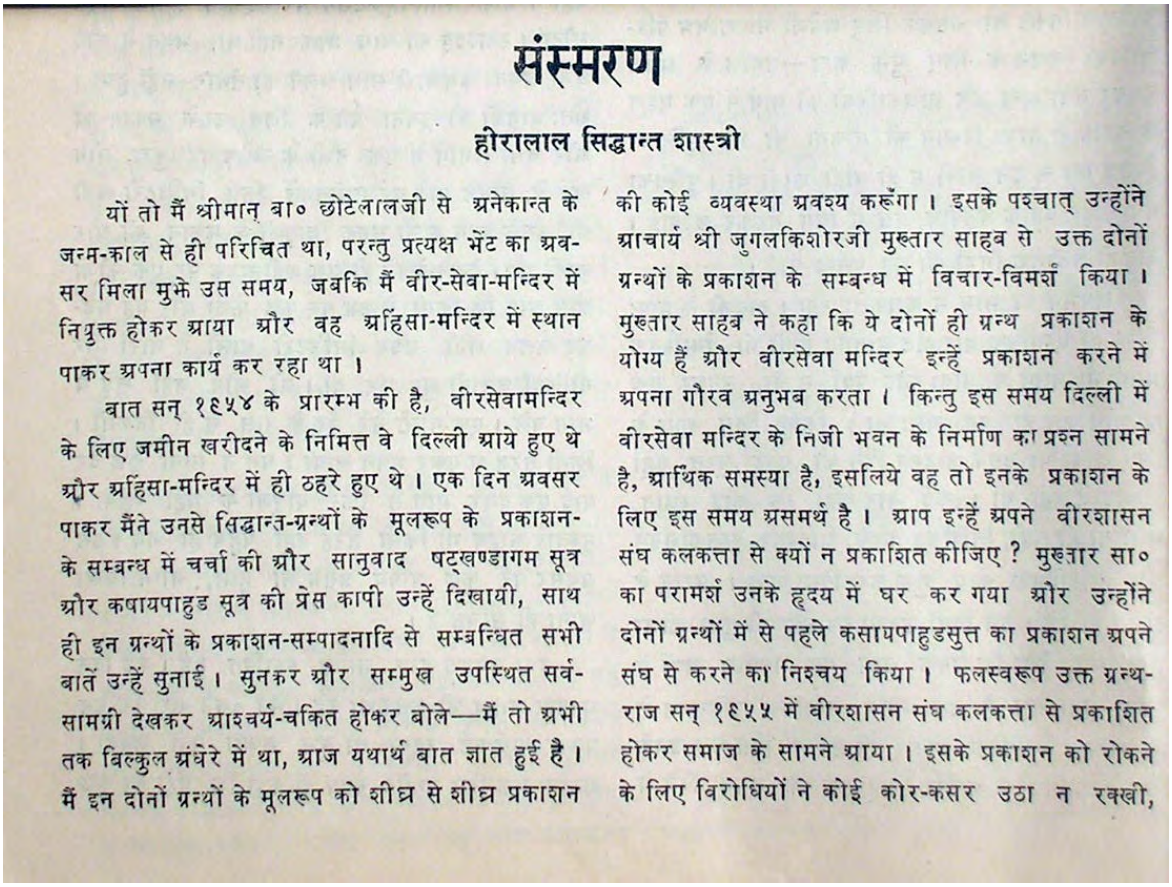

संस्मरण

हीरालाल सिद्धान्त शास्त्री

यों तो मैं श्रीमान् बा० छोटेलालजी से अनेकान्त के जन्म-काल से ही परिचित था, परन्तु प्रत्यक्ष भेंट का अवसर मिला मुझे उस समय, जबकि मैं वीर-सेवा-मन्दिर में नियुक्त होकर आया और वह अहिंसा-मन्दिर में स्थान पाकर अपना कार्य कर रहा था।

बात सन् १९५४ के प्रारम्भ की है, वीरसेवामन्दिर के लिए जमीन खरीदने के निमित्त वे दिल्ली आये हुए थे और अहिंसा-मन्दिर में ही ठहरे हुए थे। एक दिन अवसर पाकर मैंने उनसे सिद्धान्त-ग्रन्थों के मूलरूप के प्रकाशन-के सम्बन्ध में चर्चा की और सानुवाद षट्खण्डागम सूत्र और कषायपाहुड सूत्र की प्रेस कापी उन्हें दिखायी, साथ ही इन ग्रन्थों के प्रकाशन-सम्पादनादि से सम्बन्धित सभी बातें उन्हें सुनाई। सुनकर और सम्मुख उपस्थित सर्व-सामग्री देखकर आश्चर्य-चकित होकर बोले—मैं तो अभी तक बिल्कुल अंधेरे में था, आज यथार्थ बात ज्ञात हुई है। मैं इन दोनों ग्रन्थों के मूलरूप को शीघ्र से शीघ्र प्रकाशन की कोई व्यवस्था अवश्य करूँगा। इसके पश्चात् उन्होंने आचार्य श्री जुगलकिशोरजी मुख्तार साहब से उक्त दोनों ग्रन्थों के प्रकाशन के सम्बन्ध में विचार-विमर्श किया। मुख्तार साहब ने कहा कि ये दोनों ही ग्रन्थ प्रकाशन के योग्य हैं और वीरसेवा मन्दिर इन्हें प्रकाशन करने में अपना गौरव अनुभव करता। किन्तु इस समय दिल्ली में वीरसेवा मन्दिर के निजी भवन के निर्माण का प्रश्न सामने है, आर्थिक समस्या है, इसलिये वह तो इनके प्रकाशन के लिए इस समय असमर्थ है। आप इन्हें अपने वीरशासन संघ कलकत्ता से क्यों न प्रकाशित कीजिए? मुख्तार सा० का परामर्श उनके हृदय में घर कर गया और उन्होंने दोनों ग्रन्थों में से पहले कसायपाहुडसुत्त का प्रकाशन अपने संघ से करने का निश्चय किया। फलस्वरूप उक्त ग्रन्थ-राज सन् १९५५ में वीरशासन संघ कलकत्ता से प्रकाशित होकर समाज के सामने आया। इसके प्रकाशन को रोकने के लिए विरोधियों ने कोई कोर-कसर उठा न रक्खी,

किन्तु आप अपने निर्णय पर सुमेरुवत् अचल रहे। एक कृशकाय निर्बल शरीर में इतनी दृढ़ता और प्रारब्ध कार्य को पूर्णरूप से सम्पन्न करने की अद्भुत क्षमता का मुझे उनके भीतर दर्शन हुआ।

सन् १९५४ के वीरशासन जयन्ती के दिन की बात है। वीरसेवा मन्दिर का शिलान्यास २१ दरियागंज में श्रीमान् साहू शान्तिप्रसादजी द्वारा होने वाला था, उसके पूर्व वीरशासन जयन्ती मनाने का कार्यक्रम था। बाहर पश्चिम वाली गली में शामियाना खड़ाकर बैठने की सारी समुचित व्यवस्था आषाढ़ सुदी १५ के शाम को की जा चुकी थी। भाग्यवश रात्रि को मूसलाधार वर्षा ने सारे आयोजन को पानी में बहा दिया। तब आपने रात भर जागकर समीपवर्ती सुमेरु-भवन के मालिक ला० सुमेरुचंद्र जी से कहकर उनके मकान के नीचे का हाल खाली कराया और उसमें समारोह की समुचित व्यवस्था की। बारिश में लथ-पथ होते हुए एवं दमा-श्वास से पीड़ित होते हुए भी आप रात भर सब सहयोगियों को साथ में लेकर जुटे रहे और यथासमय निश्चित कार्यक्रम को संपन्न करके ही आपने दम ली। इस समय की उनकी कर्तव्य-परायणता देखकर मैं दंग रह गया।

उक्त अवसर पर श्रीमान् साहूजी ने वीरसेवा मन्दिर का शिलान्यास करने के पूर्व उसके भवन-निर्माण के लिए ग्यारह हजार रुपये देने की घोषणा की। बाबू छोटेलाल जी घोषणा के सुनते ही तुरन्त उठकर बोले—क्या मैंने रुपया लेने के लिए आपके द्वारा शिलान्यास का आयोजन किया है? पर जब आप स्वयं दे ही रहे हैं, तो मैं इतनी रकम नहीं लूंगा। इस पर साहूजी ने पच्चीस हजार रु० देने को कहा, तो बाबूजी बोले—नहीं, मैं यह रकम भी नहीं लूंगा। तब साहूजी बोले—तो आप क्या चाहते हैं? बाबूजी ने कहा—निचली मंजिल बनने में जो कुछ भी खर्चा आयेगा, वह आपसे लूंगा। साहूजी ने सहर्ष स्वीकृति प्रदान की और सारा हाल तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा। पहली मंजिल के बनने में पैंतीस हजार खर्च हुए और साहूजीने सहर्ष प्रदान किए। यहां यह उल्लेखनीय है कि बाबू छोटेलालजी और उनके बन्धुओं ने चालीस हजार में उक्त भूमि खरीद कर वीरसेवा मन्दिर को प्रदान की थी और उनके भाई श्री नन्दलालजी ने उनकी प्रेरणा पर दस हजार रुपये भवन-निर्माण के लिए और दिये थे। इसके अतिरिक्त बाबूजी और उनके परिवार हजारों ही रुपये इसके आगे और पीछे और भी वीरसे मन्दिर को प्राप्त हुए हैं। जो स्वयं देता है, वही वस्तु दूसरों से दिलाने की सामर्थ्य रखता है।

शिलान्यास के पश्चात् इधर तो वीरसेवा मन्दिर भवन-निर्माण का काम चालू हुआ और उधर बाबू बीमार पड़ गये और स्वास्थ्य-लाभार्थ कलकत्ता चले गये जब स्वास्थ्य कुछ ठीक हुआ और शीतकाल समाप्त हो को आया, तब आप भवन-निर्माण की गति-वि देखने के लिए पुनः सन् ५५ के प्रारम्भ में दिल्ली आये उस समय तक लगभग निचली मंजिल बन कर तैयार चुकी थी। जब आपने उसे देखा तो उसका रूप (आ प्रकार) आपको पसन्द नहीं आया, क्योंकि उसमें एक विशाल हाल न तो निचली मंजिल में निकला और न ऊपरी मंजिल में ही निकल सकता था। आपने स्थानीय इंजीनियरों से सम्पर्क स्थापित किया जिनमें रा०ब० बा० उल्फतरायजी मेरठ और रा० बा० दयाचन्द्रजी दिल्ली प्रमुख थे। सारे नक्शे पर विशाल हाल बनाने की दृष्टि से पुनः विचार किया ग अन्त में काफी तोड़-फोड़ के पश्चात् वर्तमान रूप हुआ। इस समय आपने अनुभव किया कि मेरे यहाँ बिना जैसा भवन मैं संस्था के लिए बनवाना चाहत वह नहीं बन सकेगा, तब आप लालमन्दिर की नी धर्मशाला में डेरा डालकर बैठ गये।

इस समय तक गर्मी ने उग्ररूप ले लिया था। आप प्रतिदिन प्रातः कार्य प्रारम्भ होने के पूर्व ही लालमन्दिर से दरियागंज पहुँचते, काम को शुरू सब ओर की देख-रेख करते और १२ बजे मजदू रोटी खाने की छुट्टी होने पर आप स्वयं रोटी खाने मन्दिर आते। लिया-दिया सा खा-पीकर तुरन्त घंटे के भीतर वापिस चले जाते और फिर ५ बजे तक काम-काज देखते। ईंट, चूना, सिमेंट, लोहा, आदि जरूरी चीजों के मंगाने की व्यवस्था करते मजदूरों की छुट्टी हो जाने के पश्चात् भी सब साम

यथास्थान सुरक्षित रखाकर ६ बजे वापिस लालमन्दिर आते। भोजन कर मुख्तार साहब से जरूरी परामर्श करते और एक बार फिर दरियागंज का चक्कर लगा आते। इस प्रकार दिल्ली की मई-जून की गर्मी भर वे पूरे दिन तपस्या करते रहे। यहां यह उल्लेखनीय है कि वीरसेवा-मन्दिर में काम करने वाले हम लोग लालमन्दिर के नीचे के हाल में खस के पर्दे लगाकर दोपहरी में आराम करते रहते थे और हम लोगों को यह पता भी नहीं चलता था कि बाबूजी कब आये और रोटी खाकर वापिस दरियागंज काम की देख-रेख को कब चले गये। कोई धनिक व्यक्ति निजी मकान बनवाने में भी इतना श्रम नहीं करता, जितना उन्होंने वीरसेवा मन्दिर के भवन-निर्माण के लिए किया।

महीनों बाबूजी के साथ रहने का तथा उनकी देख-रेख में काम करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है और पत्र-व्यवहार तो पूरे बारह वर्ष तक (मरण से २ मास पूर्व तक) चालू रहा। इस लम्बे समय में अनेकों प्रकार से मुझे उनके अन्तरंग और बहिरंग रूप को देखने और परखने का अवसर मिला है। यहां यह सम्भव नहीं कि उन सब का उल्लेख कर सकूं। पर इतना आजतक के अनुभव के आधार पर निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि ये हृदय के अत्यन्त स्वच्छ और सरल थे। सामने आये हुए व्यक्ति के मनोगत भावों को पढ़ने और समझने की उनमें अद्भुत-विलक्षण शक्ति थी और वे मनुष्य रूपी हीरों के पारखी सच्चे जौहरी थे। परिचय में आने वाले व्यक्ति के विशिष्ट गुणों पर उनकी दृष्टि जाती और उसकी प्रशंसा करते नहीं अघाते। मुझे ऐसे अनेकों अवसर याद आ रहे हैं, जहां पर कि उनके साथ मुझे दि कलकत्ता के अनेक ख्याति-प्राप्त विद्वानों, श्रीमा अन्य विशिष्ट व्यक्तियों के पास आने-जाने का प्रसं और उन्होंने जिन शब्दों के द्वारा मेरा परिचय वालों को कराया, उन्हें सुनकर मैं स्वयं लज्ज संकोच का अनुभव करने लगता था, पर वे प्रशंसा बांधते न थकते थे। सन् १९५४ के पर्युषणपर्व प कलकत्ता शास्त्र-प्रवचनार्थ जाने का अवसर आ कार लेकर लेने को स्वयं ही स्टेशन पहुंचे और निवास-स्थान पर ठहराया। दोनों समय वेलगछिय में ही शास्त्र-प्रवचन करता था। वे बराबर पूरे स चुपचाप मेरा प्रवचन आंख बन्द किये सुनते रहते समझना कि रात को खांसी की पीड़ा से नींद न कारण बाबूजी झपकी ले रहे हैं, पर घर आने प कहते कि पं० जी आज आपने अमुक बात बहुत या नवीन बात कही है, तब मेरा भ्रम दूर हो ज्ञात होता कि वे आंख बन्द किये बैठे रहने प्रत्येक शब्द कितने जागरूक होकर सुना करते थे जाने वाले व्यक्ति के सुख-दुख, खान-पान आ कितना ध्यान रखते थे, यह प्रत्येक परिचय में व्यक्ति जानता है। पत्रों द्वारा वे कितना प्रोत्स रहते थे, यह सब को ज्ञात है। मेरे पास उनके १५० पत्र सुरक्षित हैं और अनेकों शिलालेख अ कागजात भी, जिनका कि वे मेरे द्वारा सम्पादन थे। आज उन सब बातों की याद करके आंखों आ रहे हैं कि ऐसा प्रेरणा देने वाला व्यक्ति स्मरणीय बन गया है। ●